

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 6: यदुवंश प्रभास को प्रस्थान

18 September 2026



ब्रह्मा तथा शिव के नेतृत्व में देवगण द्वारका की देदीप्यमान नगरी में उतरते हैं — श्रीकृष्ण के दर्शन करने, उन्हें दिव्य पुष्पों से आच्छादित करने तथा उनकी स्तुति करने के लिए; क्योंकि उनके अवतार का प्रयोजन पूर्ण हो चुका है, और वे उनसे उनके दिव्य धाम को लौटने की प्रार्थना करने आए हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। नौ योगीन्द्रों का उपदेश पूर्ण होने तथा नारद के द्वारका से प्रस्थान करने के पश्चात्, एकादश स्कन्ध का छठा प्रवचन एक गम्भीर तथा कोमल क्षण की ओर मुड़ता है। ब्रह्मा तथा शिव सहित सम्पूर्ण स्वर्गलोक द्वारका में उतर आता है, श्रीकृष्ण को देवोचित पुष्पवर्षा से ढँककर स्तुति अर्पित करते हुए, और हृदय से यह विनती करते हुए कि पृथ्वी का भार अब उतर चुका है, अतः भगवान् अपने निज धाम को लौट चलें। श्रीकृष्ण स्वीकार करते हैं, प्रकट करते हैं कि यदुवंश का संहारण किस प्रकार आवश्यक है, और अपने स्वजनों को प्रभास की पावन भूमि की ओर प्रस्थान करने का आदेश देते हैं। और जैसे ही संसार उनके प्रस्थान का आभास पाता है, उनका प्रिय सेवक उद्धव समीप आता है — जो उस महान् उपदेश की भूमिका रचता है जो आगे प्रतीक्षारत है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 6 (षष्ठ प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: यदुवंश का प्रभास को प्रस्थान
- प्रधान वक्ता: सुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कहते हुए; कथा के भीतर देवगण, ब्रह्मा, श्रीकृष्ण तथा उद्धव क्रमशः बोलते हैं
- प्रधान श्रोता: राजा परीक्षित; कथा के भीतर, श्रीकृष्ण तथा यदुवंश के एकत्रित वृद्धजन
- मुख्य स्थान: द्वारका नगरी, यदुवंश के प्रभास-प्रस्थान की पूर्वसंध्या पर
- केन्द्रीय विषय: देवगण की स्तुति तथा भगवान् से अपने दिव्य धाम लौटने की प्रार्थना, भगवान् की स्वीकृति तथा यदुवंश के संहारण का प्रकटन, प्रभास की यात्रा, तथा उद्धव का भगवान् के समीप आना
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 1-50
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 5 में, ऋषि चमस तथा करभाजन ने राजा निमि को नौ योगीन्द्रों का उपदेश पूर्ण किया — जो भगवान् की उपेक्षा करते हैं उनकी गति, तथा वे चार युगों में किन रूपों में पूजे जाते हैं, जो कलियुग में उनके पावन नामों के कीर्तन की महिमा में परिणत होता है। वह उपदेश नारद द्वारा वसुदेव को स्मरण कराया गया था। अब, नारद के द्वारका से जाने के पश्चात्, स्वयं देवगण भगवान् के दर्शन करने तथा उनसे घर लौटने की प्रार्थना करने आते हैं।

देवगण का द्वारका में अवतरण

सुकदेव गोस्वामी ने अपनी कथा पुनः आरम्भ की। जब नारद अपना प्रवचन समाप्त कर द्वारका से चले गए, तब ब्रह्मा अपने पुत्रों — सनक आदि ऋषियों — तथा देवगण एवं प्रजापतियों सहित आए, और शिव अपने गणों सहित पधारे। मरुद्गणों सहित इन्द्र, आदित्यगण, वसुगण, अश्विनीकुमार, ऋभुगण, अंगिरा, रुद्रगण, विश्वेदेव तथा साध्यगण, गन्धर्व एवं अप्सराएँ, नाग, सिद्ध, चारण एवं गुह्यक, ऋषिगण तथा पितर, विद्याधरों एवं किन्नरों सहित — सभी द्वारका आए, श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उत्सुक, जिनका सौन्दर्य समस्त जगत् के मन को मोहित करता है और जिनका तीनों लोकों में व्याप्त यश विश्व के पापों का नाश करता है (श्लोक 1-4)।

उस देदीप्यमान नगरी में, जो प्रत्येक प्रकार के वैभव से समृद्ध है, उन्होंने अद्भुत सौन्दर्ययुक्त श्रीकृष्ण के दर्शन किए, और उन्हें देखते हुए उनके नेत्र तृप्त न हुए। यदुश्रेष्ठ को केवल स्वर्ग में उगने वाले पुष्पों से आच्छादित करते हुए, उन्होंने मनोहर शब्दों तथा उदात्त भावों से गुँथे सूक्तों द्वारा जगत्पति की स्तुति की (श्लोक 5-6)।

देवगण को स्तुति

तब देवगण ने अपनी प्रार्थना की। बुद्धि, इन्द्रियों, प्राण, मन तथा वाणी से उन्होंने भगवान् के चरणकमलों में प्रणाम किया — उन्हीं चरणों में, जिनका ध्यान भक्तजन हृदय में करते हैं, कर्म के दृढ़ बन्धन से मुक्ति की कामना करते हुए।

श्रीदेवा ऊचुः

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं

बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।

यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तै-

र्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥

śrī-devā ūcuḥ natāḥ sma te nātha padāravindam buddhīndriya-prāṇa-mano-vacobhiḥ yac cintyate 'ntar hṛdi bhāva-yuktair mumukṣubhiḥ karma-mayoru-pāśāt

अर्थ: देवगण ने कहा: हे नाथ, बुद्धि, इन्द्रियों, प्राण, मन तथा वाणी से हम आपके चरणकमलों में प्रणाम करते हैं — उन चरणों में, जिनका ध्यान भक्तिपूर्ण जन हृदय में करते हैं, जो कर्म के दृढ़ बन्धन से मुक्ति चाहते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 7)



देवगण श्रीकृष्ण को दिव्य पुष्पों से आच्छादित करते हैं और भक्ति-सूक्तों से उनके चरणकमलों में प्रणाम करते हैं (श्लोक 7)।

देवगण ने अपनी स्तुति विस्तार से आगे बढ़ाई। उन्होंने कहा कि भगवान् अपनी ही माया से उत्पन्न तीनों गुणों के अधिष्ठाता हैं, तथापि जिस सृष्टि, पालन एवं संहार को वे करते हैं, उससे सदा अस्पृष्ट रहते हैं, अपने स्वरूपभूत निर्मल आनन्द में लीन रहते हुए। अशुद्धचित्त जनों की शुद्धि, उन्होंने कहा, पूजा, अध्ययन, दान, तप तथा कर्मकाण्ड से उतनी नहीं होती, जितनी शुद्धहृदय जनों की उनकी महिमा के निरन्तर श्रवण से उत्पन्न परिपक्व श्रद्धा से होती है। उन्होंने प्रार्थना की कि उनके चरण एक अग्नि के समान हों जो प्रत्येक अपवित्र कामना को भस्म कर दे — वे चरण जिनका चिन्तन तपस्वी करते हैं, जिनकी आराधना भक्त करते हैं, जिनका ध्यान विवेकी जन दिन में तीन बार करते हैं, जिन्हें यज्ञाग्नि में अर्पित

किया जाता है, और जिन्हें माया के आवरण को भेदने के लिए यत्नशील योगी खोजते हैं। उन्होंने स्मरण किया कि किस प्रकार वामन रूप में उनके डग ने लोकों को नापा और गंगा उनकी ध्वजा-पताका के समान प्रवाहित हुई; उन्होंने उन्हें पुरुषोत्तम कहकर वन्दन किया, जो प्रकृति तथा पुरुष दोनों से परे, प्रकृति, पुरुष एवं महत्तत्त्व के नियन्ता और स्वयं काल-चक्र हैं; और उन्होंने विस्मय किया कि उनकी सोलह सहस्र रानियाँ भी अपने समस्त हाव-भाव से उनके मन को विचलित न कर सकीं। वेदों में गाई उनकी महिमा की धाराएँ तथा उनके चरणों को प्रक्षालित करने वाली पवित्र नदियाँ, उन्होंने घोषित किया, दोनों ही तीनों लोकों के पापों को धोने में समर्थ हैं (श्लोक 8-19)।

ब्रह्मा की प्रार्थना — प्रयोजन की पूर्ति

इस प्रकार श्रीहरि की स्तुति कर तथा उन्हें प्रणाम कर, ब्रह्मा — शिव तथा अन्य देवों सहित आकाश में स्थित होकर — श्रीकृष्ण से अपनी प्रार्थना की। बहुत पहले, उन्होंने स्मरण किया, देवगण ने भगवान् से पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना की थी, और यह उन्होंने ठीक वैसे ही सम्पन्न किया जैसा वांछित था। सत्यनिष्ठ तथा सद्गुणी जनों में धर्म दृढ़ता से स्थापित हुआ; यदुवंश में अवतार लेकर भगवान् ने अनुपम पराक्रम के कार्य किए, और कलियुग में पवित्र जन उन लीलाओं के केवल श्रवण एवं कीर्तन से ही अज्ञान के अन्धकार को पार कर लेंगे। तब ब्रह्मा ने उस समय का उल्लेख किया जो आ चुका था।

यदुवंशोऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ।

शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

yadu-vaṁṣe 'vatīrṇasya bhavataḥ puruṣottama śarac-chatam vyatīyāya pañca-viṁśādhikam prabho

अर्थ: हे पुरुषोत्तम, हे प्रभो, आपके यदुवंश में अवतीर्ण हुए अब एक सौ पच्चीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 25)



ब्रह्मा, शिव तथा देवगण, द्वारका के ऊपर आकाश में स्थित होकर, श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि अवतार का प्रयोजन पूर्ण होने पर वे अपने दिव्य धाम को लौट जाएँ (श्लोक 25)।

अब देवगण का कोई प्रयोजन असम्पन्न नहीं रहा, ब्रह्मा ने कहा, और यदुवंश स्वयं ब्राह्मणों के शाप से प्रायः अपने अन्त तक पहुँच चुका है। अतः, यदि भगवान् को स्वीकार्य हो, तो वे अब अपने दिव्य वैकुण्ठ-धाम को लौट जाएँ और अपने सेवकों, दिक्पालों को, उनके लोकों में पधारकर तथा उनकी आराधना स्वीकार कर अनुगृहीत करें (श्लोक 26-27)।

भगवान् का उत्तर — यदुवंश का संहरण

परमेश्वर ने उत्तर दिया कि देवगण जो माँग रहे हैं, वह उनके भीतर पहले से ही निश्चित हो चुका है।

श्रीभगवानुवाच

अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ।

कृतं वः कार्यमखिलं भूमेभरोऽवतारितः ॥ २८ ॥

śrī-bhagavān uvāca avadhāritam etan me yad āttha vibudheśvara kṛtaṁ vaḥ kāryam akhilaṁ bhūmer bhāro 'vatāritaḥ

अर्थ: परमेश्वर ने कहा: हे देवेश्वर, जो आप माँग रहे हैं, वह मैंने पहले से ही निश्चित कर लिया है; देवगण का समस्त प्रयोजन सम्पन्न हो चुका है और पृथ्वी का भार उतर चुका है। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 28)



श्रीकृष्ण देवगण की प्रार्थना स्वीकार करते हैं और प्रकट करते हैं कि प्रस्थान से पूर्व बलशाली तथा उद्धत यदुवंश का संहरण आवश्यक है — जिसे तब तक वे समुद्र को तट के समान रोके हुए हैं (श्लोक 28)।

परन्तु एक कारण था, भगवान् ने बताया, जिससे वे तत्काल प्रस्थान नहीं कर सकते थे। यदुवंश, अपने पराक्रम, शौर्य तथा ऐश्वर्य से उद्धत और समस्त जगत् को अधिकृत करने को उन्मुख, केवल उनके द्वारा ही रोका गया था — जैसे समुद्र अपने तट से रोका जाता है। यदि वे इस बलशाली तथा उद्दण्ड वंश का संहरण किए बिना चले जाते, तो समस्त मानव-जाति इससे अभिभूत हो जाती, जैसे कोई समुद्र अपनी सीमा तोड़ दे। इस

वंश का विनाश ब्राह्मणों के शाप से आरम्भ हो ही चुका है; जब वह पूर्ण हो जाएगा, उन्होंने ब्रह्मा से कहा, तब वे दिव्य धाम को आरूढ़ होंगे। यह सुनकर ब्रह्मा भगवान् के समक्ष साष्टांग गिरे और देवगण सहित अपने लोक को लौट गए (श्लोक 29-32)।

अपशकुन तथा प्रभास की यात्रा

तत्पश्चात् भगवान् ने द्वारका नगरी के ऊपर चारों ओर उठते गम्भीर तथा भयंकर अपशकुनों को देखा, और वहाँ एकत्रित यदुवंश के वृद्धों से कहा। ये असाधारण अपशकुन, उन्होंने कहा, सर्वत्र प्रकट हो रहे हैं, और ब्राह्मणों का दुर्लघ्य शाप हमारे वंश पर आ पड़ा है। तब उन्होंने अपना निर्देश दिया।

न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ।

प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥

na vastavyam ihāsmābhir jijiviṣubhir āryakāḥ prabhāsaṁ su-mahat-puṇyaṁ yāsyāmo 'dyaiva mā ciram

अर्थ: हे आदरणीय वृद्धजनो, यदि हम जीवित रहना चाहते हैं तो हमें यहाँ और नहीं रुकना चाहिए; इसी दिन, बिना विलम्ब, हम महान् पुण्यस्थल प्रभास को चलें। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 35)



द्वारका के ऊपर भयंकर अपशकुनों को देखकर, श्रीकृष्ण यदुवंश के वृद्धों को उसी दिन पवित्र स्थल प्रभास को प्रस्थान का निर्देश देते हैं (श्लोक 35)।

वहाँ प्रभास में, भगवान् ने स्मरण किया, चन्द्रदेव ने एक बार स्नान कर दक्ष के शाप से लगे क्षय-रोग से तत्काल मुक्ति पाई थी, और अपनी कलाओं की वृद्धि पुनः प्राप्त की थी। उन पवित्र जलों में स्नान कर, पितरों तथा देवों को अर्घ्य से तृप्त कर, योग्य ब्राह्मणों को भोजन कराकर तथा उन्हें बहुमूल्य दान देकर, वे भी अपने पापों को पार कर लेंगे, उन्होंने कहा — जैसे लोग जहाज से समुद्र पार करते हैं। भगवान् द्वारा इस प्रकार निर्देशित होकर, यदुगण ने उस पवित्र स्थल की यात्रा का निश्चय किया और अपने रथ सज्जित करने लगे (श्लोक 36-39)।

उद्धव भगवान् के समीप आते हैं

उनमें से एक ने इन घटनाओं का गूढ़ अर्थ समझ लिया। सदा श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित उद्धव ने तैयारियाँ देखीं, भगवान् के वचन सुने, और भयंकर अपशकुनों को देखा — और समझ गए।

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजन् श्रुत्वा भगवतोदितम् ।

दृष्ट्वारिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥

विविक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ।

प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥

*tan nirīkṣyoddhavo rājan śrutvā bhagavatoditam dṛṣṭvāriṣṭāni ghorāṇi nityam kṛṣṇam anuvrataḥ
vivikta upasaṅgamyā jagatām īśvareśvaram praṇamya śīrasā pādaḥ prāñjalis tam abhāṣata*

अर्थ: हे राजन्, यह सब देखकर, भगवान् के कहे वचन सुनकर, तथा भयंकर अपशकुनों को देखकर, सदा कृष्ण के प्रति समर्पित उद्धव — एकान्त स्थान में जगत् के ईश्वरों के भी ईश्वर के समीप आए, अपना सिर उनके चरणों में झुकाया, और हाथ जोड़कर उन्हें सम्बोधित किया। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 40-41)

उद्धव प्रेम की गहराई से बोले। हे देवों के ईश्वरों के ईश्वर, हे योगेश्वर, उन्होंने कहा, जिनके नामों तथा महिमाओं का केवल श्रवण एवं कीर्तन ही आत्मा को पवित्र कर देता है — इस वंश का संहरण कर, आप निश्चय ही इस संसार को छोड़ने वाले हैं, क्योंकि पूर्णतः समर्थ होते हुए भी आपने ब्राह्मणों के शाप का प्रतिकार नहीं किया।

श्रीउद्धव उवाच

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ।

संहृत्यैतत् कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ।

विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥

*śrī-uddhava uvāca deva-deveśa yogeśa puṇya-śravaṇa-kīrtana saṁhṛityaitat kulaṁ nūnaṁ
lokaṁ santyakṣyate bhavān vipra-śāpaṁ samartho 'pi pratyahan na yad īśvaraḥ*

अर्थ: उद्धव ने कहा: हे देवों के ईश्वरों के ईश्वर, हे योगेश्वर, जिनकी महिमाओं का श्रवण एवं कीर्तन आत्मा को पवित्र करता है — इस वंश का संहरण कर आप निश्चय ही इस संसार को छोड़ देंगे, क्योंकि हे प्रभो, समर्थ होते हुए भी आपने ब्राह्मणों के शाप को नहीं टाला। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 42)



सदा भगवान् के प्रति समर्पित उद्धव एकान्त में श्रीकृष्ण के समीप आते हैं, उनके चरणों में सिर रखते हैं, और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि वे उनसे कभी पृथक् न हों (श्लोक 42)।

उद्धव ने कहा कि वे भगवान् के चरणकमलों को आधे क्षण के लिए भी नहीं छोड़ सकते — और उन्होंने प्रार्थना की कि भगवान् उन्हें भी अपने दिव्य धाम ले चलें। जिन्होंने भगवान् की लीलाओं के श्रवण का अमृत चखा है, वे प्रत्येक अन्य कामना त्याग देते हैं; तब उनके सेवक उनके बिना कैसे रह सकते हैं, जिन्होंने उनकी सेवा की जब वे लेटे, बैठे तथा चले, जो उन मालाओं तथा चन्दन से सज्जित हुए जिन्हें भगवान् ने धारण किया था और उनके भोजन का उच्छिष्ट पाया? महान् ऋषि, समस्त राग तथा मल से मुक्त, आजीवन तप एवं ब्रह्मचर्य से भगवान् की परम स्थिति प्राप्त करते हैं; तथापि जो अपने ही समान अब भी कर्म के मार्गों में घूम रहे हैं, वे भी भगवान् के भक्तों के साथ उनकी चर्चा से — उनके वचनों तथा कर्मों, उनकी चाल, स्मित एवं चितवन तथा परिहासों, और मनुष्यों की रीति के अनुकरण में उन्होंने जो कुछ किया, उस सब का स्मरण कर — अज्ञान के अन्धकार को सहज ही पार कर लेंगे (श्लोक 43-49)।

प्रमुख श्लोक

उद्धव की प्रार्थना अनुत्तरित न रही। यह अध्याय समस्त संस्कृत शास्त्रों में सर्वाधिक अनमोल शिक्षाओं में से एक की देहली पर समाप्त होता है।

श्रीशुक उवाच

एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः ।

एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

śrī-śuka uvāca evaṁ vijñāpito rājan bhagavān devakī-sutaḥ ekāntinaṁ priyaṁ bhṛtyam uddhavaṁ samabhāṣata

अर्थ: सुकदेव ने कहा: हे राजन्, इस प्रकार प्रार्थित होकर, देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय सेवक तथा अनन्य भक्त उद्धव से बोलने लगे। (स्कन्ध 11, अध्याय 6, श्लोक 50)

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् के प्रत्येक अवतार का अपना नियत प्रयोजन तथा समय होता है। देवगण द्वारका इसलिए आते हैं क्योंकि पृथ्वी का भार उतर चुका है और कार्य पूर्ण हो गया है; भगवान् का प्राकट्य तथा उनका प्रस्थान — दोनों उनकी अपनी इच्छा से नियत हैं, संयोग से नहीं (श्लोक 21-28)।
2. भगवान् संसार की रक्षा के लिए कार्य करते हैं, संहरण में भी। श्रीकृष्ण उद्धृत यदुवंश के संहरण से पूर्व प्रस्थान नहीं करेंगे, कहीं ऐसा न हो कि एक अनियन्त्रित शक्ति मानवता को उस समुद्र के समान अभिभूत कर दे जो अपना तट तोड़ दे — उनका जाना भी एक करुणा-कर्म है (श्लोक 29-31)।
3. श्रवण से उत्पन्न श्रद्धा केवल कर्मकाण्ड से अधिक गहराई से पवित्र करती है। देवगण घोषित करते हैं कि अशुद्ध हृदय सबसे अधिक उस परिपक्व श्रद्धा से शुद्ध होता है जो भगवान् की महिमा के निरन्तर श्रवण से बढ़ती है (श्लोक 9)।
4. पवित्र स्थल तथा पवित्र कथाएँ दोनों पापों को धोते हैं। भगवान् के चरणों का स्पर्श करने वाली पवित्र नदियाँ तथा वेदों में गाई उनकी महिमा की धाराएँ — दोनों ही तीनों लोकों को पवित्र करने में समर्थ हैं (श्लोक 19)।
5. प्रेम भगवान् से वियोग सहन नहीं कर सकता। उद्धव की प्रार्थना शुद्ध भक्ति की पुकार है — माया का भय नहीं, अपितु उस प्रियतम भगवान् से पृथक् होने की वेदना जिनकी सेवा ही जीवन है (श्लोक 42-46)।
6. भगवान् का स्मरण सभी के लिए खुला है। जो अब भी कर्म के मार्गों में बँधे हैं, वे भी, उद्धव कहते हैं, भगवान् के भक्तों के मध्य उनकी चर्चा मात्र से अज्ञान के अन्धकार को पार कर सकते हैं (श्लोक 47-49)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक शान्त गरिमा है, और उसके नीचे एक कोमलता जो हृदय को छू लेती है। समस्त स्वर्ग एक रूप के दर्शन को एकत्र होता है, और स्वयं सृष्टिकर्ता आकाश में स्थित होकर कहते हैं कि कार्य पूर्ण हुआ और समय आ गया। हम ऐसे दृश्य से केवल वैभव की अपेक्षा कर सकते हैं। किन्तु भागवत उस वैभव को अकेला नहीं रहने देता। यह देवों तथा उनके सूक्तों पर नहीं, अपितु एक ऐसे भक्त पर समाप्त होता है जो वियोग की कल्पना ही सहन नहीं कर सकता। उद्धव कष्ट से बचने या शक्ति पाने की प्रार्थना नहीं करते; वे केवल उन चरणों से पृथक् न होने की प्रार्थना करते हैं जिनसे वे प्रेम करते हैं। उनके शब्दों में हम भक्ति का सच्चा माप सुनते हैं — कि उसका गहनतम भय संसार के संकट नहीं, अपितु भगवान् से दूरी है, और उसकी सर्वोच्च आशा केवल उनके समीप रहना है। और भगवान् का उत्तर, जो आगामी अध्याय के लिए रखा गया है, स्मरण कराता है कि ऐसा प्रेम कभी लौटाया नहीं जाता। जो प्रेम से उनसे लिपटा रहता है, वही उनके विदाई-ज्ञान का पात्र बनता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज उद्धव के भाव को अपना मार्गदर्शक बनाइए। भगवान् का स्मरण कर्तव्य से नहीं अपितु स्नेह से करने के लिए कुछ अविचल क्षण निकालिए — उनकी कृपा, उनके सौन्दर्य, उनकी समीपता का स्मरण करते हुए। ऐसा करते हुए, उनके पावन नाम का कोमलता से जप कीजिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” स्मरण को व्यक्तिगत तथा उष्ण रहने दीजिए, उस भाव से जो प्रियतम से क्षण भर भी दूर नहीं रहना चाहता। इस सरल अभ्यास में आप उसी भक्ति को अपनाते हैं जिसकी भागवत यहाँ प्रशंसा करता है — वह प्रेममय स्मरण जो, शास्त्र का वचन है, आत्मा को अज्ञान के अन्धकार के पार ले जाता है और उसे सदा भगवान् के चरणों के समीप रखता है।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का छठा प्रवचन भगवान् के संसार से प्रस्थान की देहली पर खड़ा है। ब्रह्मा तथा शिव के नेतृत्व में देवगण द्वारका में उतरते हैं, श्रीकृष्ण के दर्शन करने, दिव्य पुष्पों तथा सूक्तों से उनकी आराधना करने, और यह प्रार्थना करने कि अब वे अपने धाम लौट जाएँ, क्योंकि पृथ्वी का भार उतर चुका है। भगवान् स्वीकार करते हैं, किन्तु प्रकट करते हैं कि पहले उद्धृत यदुवंश का संहरण आवश्यक है, कहीं ऐसा न हो कि उसकी अनियन्त्रित शक्ति संसार को अभिभूत कर दे; और, द्वारका के ऊपर भयंकर अपशकुनों को उठते देख, वे अपने कुटुम्बियों को पवित्र स्थल प्रभास की ओर निर्देशित करते हैं। तब, इस अध्याय के कोमलतम मोड़ पर, उनका समर्पित सेवक उद्धव एकान्त में समीप आता है, अपना सिर भगवान् के चरणों में झुकाता है, और केवल यह प्रार्थना करता है कि वह उनसे कभी पृथक् न हो। इस प्रार्थना की ओर भगवान् अन्ततः मुड़ते हैं — और जो उत्तर वे देने वाले हैं, वह उद्धव-गीता नामक महान् उपदेश में विस्तार पाएगा। इस प्रकार यह अध्याय, एक साथ गम्भीर तथा प्रेममय, एकादश स्कन्ध की गहनतम प्रज्ञा का द्वार खोलता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य प्रज्ञा हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, षष्ठ प्रवचन, पृष्ठ 538–544।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एकल प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-6-yaduvansh-prabhas-prasthan-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट